''वर्तमान में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु उपयोगी यौगिक आहार : एक विवेचनात्मक अध्ययन''

मधु प्रधान[1], डॉ. नीलिमा पाठक[2]
[1]पी.एच.डी. शोधार्थी, यौगिक साइंस एवं नेचुरोपैथी विभाग, सरला बिरला विष्वविद्यालय, राँची
[2]संकायाध्यक्ष, यौगिक साइंस एवं नेचुरोपैथी विभाग, सरला बिरला विष्वविद्यालय, राँची

सारांश–
मानव जीवन के मुख्य स्तंभों में आहार का स्थान सर्वोपरि है। शारीरिक और मानसिक चेतना का विकास पूरी तरह से इसी पर निर्भर करता है, जो एक उत्तम जीवनशैली के संचालन के लिए अनिवार्य है। इसीलिए प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु उपयोगी योगिक आहार का विवेचनात्मक अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोधानुसार भारतीय पारंपरिक शास्त्रों का भी यही मानना है कि सात्विक एवं उत्तम पोषण न केवल शरीर को, बल्कि मन और अंतरात्मा को भी तृप्त व ऊर्जावान करता है।

मानव शरीर के विकास, आंतरिक क्षतिपूर्ति और ऊर्जा उत्पादन का मुख्य स्रोत आहार ही है। इसलिए यौगिक क्रियाओं की सफलता के लिए संतुलित खान–पान अनिवार्य माना गया है। भोजन को केवल एक भौतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि चेतना के विकास का आधार माना गया है, जबकि आधुनिक दृष्टिकोण इसे महज पेट भरने के साधन के रूप में देखता है। पोषण केवल क्षुधा शांत करने का साधन नहीं है, बल्कि यह वह तत्व है जो शरीर की धातुओं का पुनर्निर्माण करता है, शारीरिक संवर्धन में सहायता देता है और प्राण ऊर्जा का संचार करता है। यही कारण है कि योग साधना के साथ–साथ भोजन की शुद्धता पर भी विशेष बल दिया गया है। सनातन संस्कृति में आदिकाल से ही मनीषियों और योगियों ने भोजन को केवल पेट भरने का माध्यम न मानकर, उसे मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान से जोड़ा है। इसके विपरीत, वर्तमान समय में भोजन को मात्र शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति तक सीमित कर दिया गया है। योग शास्त्रों के अनुसार भोजन को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। अजीर्नत्वम्, अति अजीर्नत्वम और कुजीर्नत्वम। इसमें अनुसार, भोजन के प्रति उचित दृष्टिकोण, उचित संयम, भोजन के प्रकार और भोजन के महत्वों को भी उजागर किया गया है। यौगिक शास्त्रों के अनुसार आहार के दो प्रकार हैं। पथ्य और अपथ्य।पथ्य आहार वह आहार कहलाता है, जो सुपाच्य हो, व शरीर को उर्जारत् रखे, व शरीर को उचित पोषण दे तथा शरीर के सूक्ष्म चैनलों में अशुद्धियों को जमा न होने दे, एवं जिसके ग्रहण करने से मन व शरीर को प्रसन्नता प्राप्त हो वही पथ्य या हितकर आहार है। इसके विपरीत वह आहार जो पचने में कठिन हो तथा अन्य समस्याओं को उत्पन्न कर स्वास्थ्य का खराब करें वे आहार अपथ्य आहार कहलाते हैं। योग अभ्यास के साथ आहार पर भी उचित ध्यान देना चाहिए। हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता और योगतत्वोपनिषद् जैसे प्रामाणिक ग्रंथों के अनुसार, व्यक्ति के विचार और प्रवृत्ति उसके भोजन से तय होती है (जैसा अन्न, वैसा मन)। इसलिए, पूर्ण रूप से निरोगी और संतुलित जीवन जीने के लिए सदैव सात्विक और पोषक आहार को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। अतः संपूर्ण शारीरिक व मानसिक कल्याण के लिए सात्विक और नियमबद्ध भोजन ग्रहण करना ही सर्वथा उचित है।

कूट शब्दः योग, योगिक आहार, एवं स्वास्थ्य।

1. प्रस्तावना–

सनातन संस्कृति के जीवन दर्शन का मुख्य आधार योग है, जिसे एक अत्यंत प्राचीन और प्रामाणिक विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है। यौगिक

ग्रंथों के मत अनुसार, जिस प्रकार आत्म–साधना के लिए योग आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार भोजन ग्रहण करना भी एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है। यह साधना मनुष्य को समाधि के उच्चतम आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने के मार्ग को सुगम बनाती है। संतुलित और सात्विक आहार अपने आप में एक उत्कृष्ट औषधि है, क्योंकि यह शरीर के आंतरिक दोषों को नियंत्रित कर अस्वस्थता से रक्षा करता है।

हमारे प्राचीन वेदों में आहार को जीवन कहा गया है। आहार जीवन जीने हेतु महत्त्वपूर्ण कारक है। इसी प्रकार तैत्तरीय उपनिषद में कहा गया है कि *"यथा अन्नं तथा मनः"* अर्थात् जो साधक जैसा अन्न खाता है वैसा ही उसका मन हो जाता है (शास्त्री, 2015)। इसका सीधा अर्थ यह है कि एक साधक जिस प्रकार की शुद्धता और चेतना का भोजन ग्रहण करता है, ठीक उसी के अनुरूप उसके मन, विचारों और मानसिक स्थिति का निर्माण होता है। अतः योगी को वही भोजन ग्रहण करना चाहिए जो उसके शारीरिक, मानसिक व अध्यात्मिक विकास में सहायक हो। उसे सर्वदा सात्विक भोजन ही ग्रहण करना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में आहार को त्रिगुणों के आधार पर तीन श्रेणियों तामसिक, राजसिक व सात्विक में बांटा गया है (सरस्वती, महाराजा, और देवा, 2012)। प्राचीन आयुर्वेदिक और यौगिक शास्त्रों ने आहार की अवधारणा व प्रकारों को स्पष्ट करते हुए आहार द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धित उत्थान एवं स्वास्थ्य समस्याओं के समाधानों को बतलाया है (दिगम्बरजी, और झा, 2008; सरस्वती, 2004; चौधरी, और किनागे, 2018)। आयुर्वेद भोजन को अच्छे व बुरे माध्यम से नही बताता अपितु भोजन को प्रभावित करने वाले कारकों जैसे–मौसम, ताजगी, पर्यावरणीय कारक ,आहार के जैविक गुण, बनाने का तरीका आदि के अनुसार बाँटता है (चौधरी, और किनागे, 2018)।

समकालीन परिवेश में दोषपूर्ण खान–पान की आदतें, पोषण संबंधी अज्ञानता और केवल स्वाद की लालसा के कारण लोग पोषक तत्वों से विहीन भोजन का उपभोग कर रहे हैं, जिसका सीधा नकारात्मक प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर दिखाई देता है। वास्तव में, एक निरोगी जीवन के लिए किसी भी खाद्य पदार्थ के सेवन से पूर्व उससे जुड़े नियमों और अनुशासनों का पालन सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य है। भोजन मात्र पेट भरने का माध्यम नहीं बल्कि एक प्राकृतिक चिकित्सा है, जो शरीर के आंतरिक दोषों में सामंजस्य बनाए रखती है। हमारे प्राचीन वैदिक वास्त्विकता में भी अन्न को जीवन का मुख्य आधार (प्राण) माना गया है। पौराणिक वेदों के अनुसार आहार को जीवन कहा गया है। योग में व्यक्ति को उसकी प्रकृति के अनुसार, अल्प भोजन व संतुलित भोजन करने की अच्छी आदतों वाले व्यक्ति को मिताहारी व स्वस्थ व्यक्ति की श्रेणी में रखा गया है तथा हिताहार के अर्न्तगत किस रोग के प्रबन्धन में कौन सा आहार फायदेमंद है यह भी विस्तृत रूप से सम्यक् विवेचित किया गया हैं। इसी प्रकार आयुर्वेद के तहत ऋतुचर्या, एक विषे अवधारणा है, जिसके तहत मौसम के अनुसार खान–पान में बदलाव की सलाह दी जाती है। उदाहरण के लिए, शीत ऋतु में खट्टे फलों का और ग्रीष्म ऋतु में रसीले पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य संवर्धन के लिए अत्यंत गुणकारी है। जब कोई साधक योग साधना के साथ–साथ सात्विक व नियमबद्ध आहार अपनाता है, तो वह सांसारिक विकारों और वासनाओं से मुक्त होकर आध्यात्मिक सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो जाता है।

2. उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु उपयोगी योगिक आहार का विवेचनात्मक अध्ययन करना है।

3. अनुसंधान पद्धति–

प्रमुख योगग्रंथों– घेरण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, श्रीमद्भगवद् गीता और योगतत्वोपनिषद् के मध्य आहार व्यवस्था का

सटिक व्याख्यात्मक वर्णन प्रस्तुत है। अतएव, प्रस्तुत शोधअध्ययन पूर्णतः द्वितीयक ऑकड़ों पर आधारित होने के कारण प्रस्तुत विषय की व्याख्या हेतु उपरोक्त प्रमुख योग ग्रंथों एवं इन ग्रंथों पर आधारित भाष्यों एवं टीकाओं के अध्ययन द्वारा संकलित तथ्यों पर आधारित है।

4. वर्तमान में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु उपयोगी यौगिक आहार

i. भोजन की मात्रा (मिताहार/पथ्यम)–

हठयोग के तहत 'मिताहार' एक आहार सम्बधित ऐसी विषिष्ट अवधारणा हैं जिसके पालन मात्र से व्यक्ति स्वास्थ्य की ऊँचाईयों को छू सकता है। आहार की अवधारणा के अंतर्गत मिताहार का अर्थ होता है उतना ही भोजन का सेवन करना जिससे पेट भूखा न रहे और शरीर को पोषण भी प्राप्त हो सके। मिताहार के पालन से शरीर व मन संतुलन की अवस्था में बना रहता है (कृष्णानन्द; सरस्वती, 2004; निरन्जनानन्द, 2012; दिगम्बरजी, और झा, 2008; गम्भीरानन्द, 2006; श्रीमाथम, 2013)। हठयोग प्रदीपिका के प्रथम अध्याय के पहले सूत्र के माध्यम से मिताहार के बारे में चर्चा करते हुए कहा गया है कि –

''सुस्निग्धमधुराहारष्चतुर्थांषविवर्जितः।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्चते।। (हठयोग प्रदीपिका– 1/58)

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।
नानारोगो भवेत्तस्य किञ्चिद्योगो न सिध्यति।। (घेरण्ड संहिता– 5/16)

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु त्रुतीयकम्।
उदरस्य तुरीयांषं संरक्षेद्वायुचारणे।। (घेरण्ड संहिता– 5/22)

उक्त श्लोकानुसार, जो साधक मिताहार, ब्रह्मचर्य एवं त्याग का पालन करते हुए योग के प्रति पूर्ण समर्पित होता है। वह सिद्ध की प्राप्ति बहुत जल्द कर लेता है। मिताहार वह भोजन है जो सुगन्धित व मधुर होने के साथ ही पूर्ण आहार का चौथा हिस्सा खाया जाए व भगवान को अर्पित करने के बाद ही ग्रहण किया जाए। भोजन केवल तीन पहर ही ग्रहण करें जिससे अमाशय पर अतिरिक्त बोझ न पड़े। एक योगी को भोजन शरीर की औषधि जो कि दिमाग व शरीर को ऊर्जा देगी ऐसा मानकर ही ग्रहण करना चाहिए।

यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार, पुनः गर्म किया गया (बासी), अत्यधिक तीखा, अत्यधिक लवणयुक्त (नमकीन) तथा रूखा भोजन सर्वथा वर्जित माना गया है (दिगम्बरजी, और झा, 2008)।

इसी क्रम में, घेरण्ड संहिता के पंचम अध्याय के 16वें और 22वें श्लोक में महर्षि घेरण्ड ने योग साधना के साथ संतुलित आहार (मिताहार) की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया है। स्वास्थ्य की रक्षा के लिए खान–पान के अनुशासनों का अनुसरण करने की यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इसके विपरीत, असमय और अहितकर भोजन मानव शरीर में विभिन्न प्रकार के विकारों व व्याधियों को जन्म देता है। महर्षि घेरण्ड ने योग अभ्यास के समानांतर ही आहार के नियमों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। उनके मतानुसार, साधक को अपने भीतर के अहम् (अहंकार) को समाप्त करने के लिए प्रत्येक भोजन को ईश्वर के 'प्रसाद' भाव से ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उन्होंने आमाशय के विभाजन का एक वैज्ञानिक नियम प्रतिपादित किया है कि अमाशय को पूरी तरह खाने से नही भरना चाहिए उसमें आधा भोज्य पदार्थ, एक चौथाई जल एवं एक चौथाई वायु संचालन हेतु स्थान होना चाहिए। नियमानुसार भोजन करने से पेट में कब्ज जैसी उदर समस्याएँ नहीं होतीं और व्यक्ति दीर्घायु व स्वस्थ रहता है (सरस्वती, 2004)।

(ii). भोजन की गुणवत्ता (सात्विक आहार– साधक के लिए विशिष्ट प्रकार की सब्जियाँ और फल)–

यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार, जिन खाद्य पदार्थों के सेवन से शरीर ऊर्जावान रहता है और मन में सकारात्मकता व प्रसन्नता का संचार होता है, उन्हें 'पथ्य आहार' (हितकारी भोजन) की श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत, जो खान–पान

और जीवनशैली शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती है, उसे अपथ्य आहार' (अहितकारी भोजन) कहा जाता है। प्रमुख योग ग्रंथों के दिशा–निर्देशों के आलोक में, साधकों के लिए उपयोगी पथ्य और वर्जित अपथ्य आहार के मुख्य उदाहरणों को नीचे दी गई तालिका में वर्गीकृत किया गया है (कनेरिया, और दावे, 2023)–

(iii). **अनुकूल खाद्य पदार्थ (पथ्य)–**

पथ्य आहार को ही सात्विक आहार कहा जाता है यह आहार स्वास्थ्य हेतु आदर्श आहार है। सात्विक भोजन जीवन, शक्ति, ऊर्जा, कल्याण व प्रसन्नता को बढ़ावा देता है (रेड्डी, 2022)। खाद्य पदार्थों को पाचन के आधार पर श्रीमद्भगवद् गीता में 17 वें अध्याय के 8 वें श्लोक के द्वारा तीन श्रेणियों तामसिक, राजसिक व सात्विक में बांटा गया है (धिमन, और अमर, 2018)।

''आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः।।'' (श्रीमद्भगवद्गीता– 17/8)

इसी संदर्भ में, हठयोग प्रदीपिका के प्रथम अध्याय के 62वें श्लोक में सात्विक आहार को योग साधकों के लिए सर्वाधिक कल्याणकारी और फलदायी घोषित किया गया है। ग्रंथ के अनुसार, 'पथ्य' की श्रेणी में आने वाले खाद्य पदार्थ ही योगियों के लिए सर्वोत्तम माने गए हैं। इनमें मुख्य रूप से सुपाच्य धान्य जैसे गेंहूँ, चावल (विशेषकर सांठी चावल) और जौ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, तरल और पोषक पदार्थों में शुद्ध दुग्ध, घी, खांड, मिश्री, मक्खन, शहद तथा प्राकृतिक वर्षा के स्वच्छ जल को उत्तम पथ्य स्वीकार किया गया है।

शाक (सब्जियों) के अंतर्गत जीवन्ती, बथुआ, पुनर्नवा, मेघनाद और चौलाई के साथ–साथ मूंग जैसी सुपाच्य दालों को साधक के लिए हितकर बताया गया है। संक्षेप में, एक योग साधक को ऐसा भोजन ग्रहण करना चाहिए जो स्निग्ध (चिकनाई युक्त घी से युक्त), सुमधुर, शरीर का पोषण करने वाला और गाय के दूध से निर्मित हो, जो मन को प्रसन्न करे तथा योग साधना के अनुकूल हो।

''गोधूम–शालि'–यव–षहाष्टिक–शोभनान्नंकष्हीराज्य–खण्ड–नवनीत–सिद्धा–मधूनि।
शुण्ठी–पटोला–कफलादिक–पञ्छ–शाकंमुद्गादि–दिव्यमुदकं छ यमीन्द्र–पथ्यम।।'' (हठयोग प्रदीपिका– 1/62)

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड जी ने पाँचवें अध्याय के अर्न्तगत 20 वें सूत्र में ''पांच सब्जियां बालासाका, कालासाका, पटोलापत्रका, वास्ताका, एवं हिमलेचिका बतायी गई हैं।''

''बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम्।
पञ्चशाकं प्रशंसीयाद्वास्तूकं हिलमोचिकाम्।। (घेरण्ड संहिता–5/20)

गोधूममुद्गशाल्यन्नं योग वृद्धिकरं विदुः।
ततः परं यथेष्टं तुक्तः स्याद्वयुधारणे।।'' (योगतत्वउपनिषद–श्लोक 48)

आगे महर्षि घेरण्ड जी ने पाँचवें अध्याय के अर्न्तगत 49 वें सूत्र में बताया है कुछ पत्तेदार सब्जियां पालक के समान होती हैं उनका सेवन करना चाहिए तथा जो दालें पचने में आच्छी हो जैसे मूंग, मसूर, आदि उन्हें खाना चाहिए। बहुत अधिक खट्टी व अम्लीय चीजों व दही, प्याज, फूलगोभी आदि के सेवन से शरीर में पित्त की मात्रा बढ़ती है तथ गैस बनती है। जो आहार शीतल व सुपाच्य एवं शरीर को पोषण प्रदान करें उन्हें ग्रहण करना चाहिए (सरस्वती, 2004)।

''पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातु–प्रपोषणम्।
मनोभिलाषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।'' (हठयोग प्रदीपिका– 1/63)

हठयोग प्रदीपिका एवं आयुर्वेद के आलोक में आहार और धातु पोषण हठयोग प्रदीपिका के प्रथम अध्याय के 63वें श्लोक में स्वामी स्वात्माराम जी ने साधकों के लिए उपयुक्त भोजन के आवश्यक गुणों का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार, योगियों को ऐसा भोजन ग्रहण करना चाहिए जो स्निग्ध (घृतयुक्त), अत्यंत मधुर,

बलवर्धक, मन के अनुकूल और गाय के दूध से निर्मित उत्पादों से युक्त हो। आहार का मुख्य उद्देश्य शरीर की मूल धातुओं का संवर्धन करना होना चाहिए। यौगिक और आयुर्वेदिक विज्ञान के अनुसार, मानव शरीर सात मूलभूत संरचनाओं (सप्तधातुओं) रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र से निर्मित है, जिन्हें पोषण केवल संतुलित अन्न से ही प्राप्त होता है।

प्राचीन काल से ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए भोजन के कड़े नियमों का विधान रहा है, क्योंकि प्रकृति के विपरीत और अनियमित खान–पान शरीर में विभिन्न प्रकार के रोगों को जन्म देता है। यही कारण है कि योग और आयुर्वेद दोनों में ही आहार संबंधी अनुशासनों पर विशेष बल दिया गया है, जिसके अंतर्गत ग्रीष्म, शीत और वर्षा जैसी विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल भोजन (ऋतुचर्या) करने के नियम निर्देशित हैं। इसके अतिरिक्त, सचेतन रूप से भली–भांति चबाकर ग्रहण किया गया भोजन मनुष्य का शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर कल्याण करता है शास्त्रीय भाषा में इसी को 'पथ्य आहार' की संज्ञा दी गई है (दिगम्बरजी और झा, 2008)।

(iv). **प्रतिकूल खाद्य पदार्थ (अपथ्यम्)–**

''कटूवम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतषाकंसौवीरतैलतिलसर्ष पमद्यमत्सयान्।
अजादिमांसदधितक्रकुलत्थकोलपिण्याक हिङ्गुलषुनाद्यमपथ्यमाहुः।।'' (हठयोग प्रदीपिका– 1/59)

''भोजनमहितं विद्यात्पुनरस्योष्णीकृतं रूक्षम्।
अतिलवणमम्लयुक्तं कदषनषाकोत्कटं वर्ज्यम्।'' (हठयोग प्रदीपिका– 1/60)

''लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तिक्ष्णकम्।
शाकजातं रामठादि वहनिस्त्रीपथसेवनम्।।'' (योगतत्वोपनिषद् – 47)

''लघुपाकं प्रियं स्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।'' (घेरण्ड संहिता– 5/29)

योग साधना की सफलता में आहार की शुद्धि को एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ माना गया है। यौगिक ग्रंथों के अनुसार, वे खाद्य पदार्थ जो साधना के मार्ग में मानसिक या शारीरिक अवरोध उत्पन्न करते हैं, वे आहार अपथ्य या निषिद्ध आहार कहलाते हैं (सरस्वती, 2004; विजयालक्ष्मी, 2003)। स्वामी स्वात्माराम कृत 'हठयोग प्रदीपिका' के प्रथम अध्याय (श्लोक 59–60) में योग साधकों के लिए अनुपयुक्त भोजन की एक विस्तृत सूची दी गई है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित पदार्थों के सेवन की मनाही है (दिगम्बरजी और झा, 2008) कड़वा, अम्लीय, नमकीन, तीखा, खट्टी भाजी, गरम, तिल, मद्य, माँस, मछली, छाछ, कलथी, खल्ली, लहसुन, हींग, दही आदि भोजन को योगियों के लिए अपथ्य भोजन कहा है (दिगम्बरजी, और झा, 2008)। यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार, एक बार पकने के बाद दोबारा गर्म किया गया भोजन अपनी मूल प्राणिक ऊर्जा और पोषक तत्व खोकर तामसिक हो जाता है, इसलिए इसका निषेध किया गया है। इसके साथ ही, अत्यधिक नमक, बहुत अधिक खट्टे, रूखे, भारी और मसालेदार पदार्थों से युक्त भोजन शरीर के द्रवों का संतुलन बिगाड़कर पाचन तंत्र पर अतिरिक्त बोझ डालता है, जिससे साधना के लिए आवश्यक शारीरिक हल्कापन समाप्त हो जाता है। भोजन निर्माण के संदर्भ में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि अलग–अलग प्रकृति और भिन्न तासीर वाली सब्जियों को एक साथ मिलाकर नहीं पकाना चाहिए, क्योंकि इनका परस्पर मिश्रण पेट में प्रतिकूल रासायनिक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करता है जो शारीरिक प्रणालियों में बाधा डालती हैं। शारीरिक संयम और ब्रह्मचर्य के पालन के दौरान साधक को अत्यधिक गर्म या बहुत ठंडी वस्तुओं के सेवन से बचना चाहिए ताकि शरीर का ऊर्जा प्रवाह संतुलित रहे। इसी प्रकार, यद्यपि लहसुन और हींग सामान्य स्वास्थ्य या चिकित्सा की दृष्टि से हानिकारक नहीं हैं, परंतु आयुर्वेदिक और यौगिक ग्रंथों के अनुसार ये शरीर में 'रजोगुण' की

वृद्धि करते हैं और सेक्स हार्मोन्स को उत्तेजित करते हैं। यह मानसिक चंचलता बढ़ाता है, जिससे एकाग्रता भंग होती है। किसी विशेष लक्ष्य या उच्च साधना में लीन योगियों के लिए इनका सेवन अनुचित माना गया है। इसके अतिरिक्त, बहुत अधिक तैलीय और शरीर में अत्यधिक पित्त या गर्मी पैदा करने वाले पदार्थों से पूरी तरह बचना चाहिए। अपथ्य आहार के अंतर्गत धूम्रपान और मदिरापान को सबसे प्रखरता से वर्जित किया गया है, क्योंकि ये विषैले पदार्थ मानव शरीर के यकृत और मस्तिष्क की अत्यंत संवेदनशील कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं, जो वैज्ञानिक रूप से भी पुनः विकसित नहीं हो पातीं और साधक की चेतना का स्थायी पतन करती हैं। संक्षेप में, हठयोग के अनुसार साधक को केवल उसी भोजन को अपनाना चाहिए जो सुपाच्य हो, मन को शांत रखे और किसी भी प्रकार का आलस्य या उत्तेजना पैदा न करे (हठयोग प्रदीपिका– 1/60; दिगम्बरजी, और झा, 2008; मुक्तिबोधानन्द, 2004)।

5. निष्कर्ष–

अतएव, प्रस्तुत शोध के निष्कर्षानुसार यौगिक जीवन शैली में भोजन को केवल शारीरिक पोषण का माध्यम न मानकर एक साधना माना गया है। यदि खाद्य पदार्थों का सेवन शास्त्रोक्त और अनुशासित रीति से किया जाए, तो वह शरीर के लिए 'अमृत' के समान जीवनदायिनी ऊर्जा प्रदान करता है। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति अत्यंत पोषक व संतुलित भोजन भी ग्रहण कर रहा हो, परंतु उसके सेवन का समय अनुचित हो अथवा उसे तैयार करने और खाने की विधि दोषपूर्ण हो, तो वही सात्त्विक भोजन भी स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह (विषाक्त) साबित हो सकता है।

यद्यपि, योग विज्ञान के अंतर्गत प्रतिपादित पंचकोश सिद्धांत में 'अन्नमय कोश' मानव अस्तित्व का सबसे स्थूल और दृश्य धरातल है, जो संपूर्ण भौतिक काया के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। सूक्ष्म कणों (जैसे इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि) से निर्मित इस कोश का संवर्धन और विकास मनुष्य द्वारा ग्रहण किए जाने वाले भोजन के पोषक तत्वों पर निर्भर करता है। संरचनात्मक रूप से, हमारी पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ भी इसी भौतिक आवरण के माध्यम से संचालित होती हैं। योग साधना में लीन साधकों के लिए सात्विक आहार को सर्वोपरि माना गया है, क्योंकि भोजन की अंतर्निहित प्रकृति मानवीय चेतना और व्यवहार को सीधे रूपांतरित करती है। शास्त्रों के अनुसार, तामसिक भोजन व्यक्ति में अज्ञान, प्रमाद और जड़ता (तमोगुण) की वृद्धि करता है, जबकि राजसिक भोजन मन में चंचलता और अति–सक्रियता पैदा करता है (जिसका परिणाम अंततः थकान और आलस्य के रूप में सामने आता है)। इसके विपरीत, सात्विक भोजन शरीर और मन में सौम्यता, परम शांति, शारीरिक हल्कापन और लक्ष्य के प्रति वैचारिक स्पष्टता लाता है। जैव–रासायनिक स्तर पर, सात्विक आहार शरीर के रसायनों को अनुकूलित कर पाचन तंत्र को पुनर्जीवित करता है। यौगिक और आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार, भोजन से पोषण प्राप्त करने की पूरी प्रक्रिया 'अग्नि' (जठराग्नि) पर आश्रित है। भोजन का पाचन, अवशोषण तथा चयापचय जैसी समस्त क्रियाएँ इसी आंतरिक अग्नि के माध्यम से संपन्न होती हैं। यदि कोई साधक अपनी व्यक्तिगत शारीरिक प्रकृति के अनुसार अहितकर (अपथ्य) पदार्थों का पूर्ण त्याग कर, नियमों के अनुरूप संतुलित और सुपाच्य (पथ्य/मिताहार) भोजन ग्रहण करता है, तो उसकी पाचक अग्नि संतुलित रहती है। यह व्यवस्था शरीर को समस्त व्याधियों (रोगों) से मुक्त रखकर उत्कृष्ट स्वास्थ्य प्रदान करती है, जिससे साधक योग के उच्च आध्यात्मिक सोपानों को सुगमता से प्राप्त कर लेता है।

संदर्भ सूची–

1. दिगम्बरजी, एस., और झा, पी., (2008), *हठ प्रदीपिका,* कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग–मन्दिर समिति, लोनावाला ;पुणेद्ध महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या– 45, श्लोक संख्या– 2/22।
2. शास्त्री, ऐ. के. वी., (2015), *उपनिषत्सञ्चयनम्: कौशितकि उपनिषद:,* चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, सूत्र संख्या 1/2।
3. सरस्वती, पी.एस.एस.बी., महाराजा, जी., और देवा, एस.बी.आर.एस., (2012), *श्रीमद् भगवद्–गीता,* चेन्नई: अर्षा विद्या रिसर्च एंड पब्लिकेशन ट्रस्ट, 17/8।
4. सरस्वती, एस., एस., (2004), *घेरण्ड संहिता,* योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, पृष्ठ संख्या–49, श्लोक संख्या– 1/21।
5. Chaudhari, D. P., & Kinage, P. R. (2018). Importance Of Aahar-Vidhi-Visheshayatana For Prevention Of Life Style Disorders: A Review.
6. Dhiman, S., & Amar, A. D. (2018). Managing by the Bhagavad Gita: Timeless lessons for today's managers. Springer.
7. Gambhirananda, S. (2006). *Bhagavadgita (commentary of Sankarascharya),* advaitha Ashrama publication & Kolkata 700014.
8. Kaneriya, S., & Dave, N. (2023). A Comparison Of Pathaya And Apathya Rules Among Hyp, Gs And Ytu. *Vidya-A Journal Of Gujarat University*, *2*(2), 178-182.
9. Krishnananda, S., *Chandogya Upanishat*, The Divine Life Society Sivananda Ashram, Rishikesh, India Website: www.swami-krishnananda.org
10. Muktibhodananda, S. (2004). *Hatha Yoga Pradipika.* Yoga Publications,Bihar school of yoga.
11. Reddy, G. (2022). Yogic diet for well-being. *International Journal of Multidisciplinary Educational Research*, *12*, 2277-7881.
12. Saraswati, N., (2012). *GherandaSamhita* (GS), Editors-Swami (Saraswati S.N. Yoga Publications trust (2012))- commentary on the yoga teachings of maharshi Gheranda
13. Srimatham, R. R. A., (2013). *The Taithariya Upnishat* by mahadeva shastri 1903 Reformatted and Republished by Sri Rama Ramanuja Achari srimatham 2013.
14. Vijayalaxmi M (2003). *Gheranda Samhita,* ,translated by Chandra Vasu, Shivalik, Prakashan Delhi.